दैनिक जागरण
जीवन को सार्थक बनाना है तो पहले उसका उद्देश्य समझना होगा

खतरनाक राजनीति

यह अच्छा हुआ कि नागरिकता कानून को लेकर दिल्ली में बड़े पैमाने पर आगजनी और तोड़फोड़ करने वाले अराजक तत्वों के खिलाफ पुलिस की कार्रवाई के विरोध में सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाने वालों को खाली हाथ लौटना पड़ा। सुप्रीम कोर्ट ने हिंसा थमने पर ही मामले को सुनने की बात कह कर उन लोगों के मंसूबों पर पानी फेर दिया जिन्होंने पहले तो अराजक तत्वों को हिंसा के लिए उकसाया और फिर पुलिस की ज्यादती का रोना रोया। वास्तव में यही काम कई विपक्षी दल भी कर रहे हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे पुलिस की कथित ज्यादती का तो उल्लेख कर रहे हैं, लेकिन हिंसक तत्वों के खिलाफ एक शब्द भी कहने को तैयार नहीं। यह तब है जब अराजक तत्वों की हिंसा में करीब तीन दर्जन पुलिस कर्मी घायल हुए। प्रियंका गांधी का धरना हिंसक तत्वों की अराजकता से ध्यान बंटाने की कोशिश का ही हिस्सा अधिक जान पड़ता है। वैसे तो राजनीतिक दल पहले भी लोगों की भावनाओं से खेलकर अपना उल्लू सीधा करते रहे हैं, लेकिन नागरिकता कानून को लेकर उनकी ओर से जैसा दुष्प्रचार किया जा रहा है उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। सरकार की ओर से बार-बार यह स्पष्ट किया जा रहा है कि इस कानून का देश के नागरिकों से कोई लेना-देना नहीं, फिर भी कई राजनीतिक दल यही माहौल बनाने में लगे हुए हैं कि यह कानून भारतीय मुसलमानों के खिलाफ है। पश्चिम बंगाल में तो इस दुष्प्रचार के साथ-साथ हिंसक तत्वों को शह भी दी जा रही है। यह भारतीय राजनीति का खतरनाक रूप है।

क्या देश के विभिन्न मुस्लिम शिक्षा संस्थानों के छात्रों को बरगलाकर सड़क पर उतारने वाले यही नहीं साबित कर रहे कि उन्हें बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बहुसंख्यकों की चिंता खाए जा रही है? अगर भारत इन देशों के बहुसंख्यकों के बजाय वहां सताए और अपमानित किए जा रहे अल्पसंख्यकों की परवाह कर रहा है तो इसे लेकर आसमान सिर पर उठाने का क्या मतलब? क्या भारत कोई धर्मशाला है कि जो चाहे यहां बस जाए? ध्यान रहे कुछ समय पहले म्यांमार के रोहिंग्याओं को भारत में बसने देने की जिद पकड़ी गई थी? नागरिकता कानून के विरोध में अराजकता फैलाने वाले संविधान की दुहाई तो देने में लगे हुए हैं, लेकिन इस कानून पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले की प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं। क्या संविधान और लोकतंत्र की दुहाई देने वाले ऐसा ही भीषण उत्पात मचाते हैं? इस उत्पात को लेकर केंद्र सरकार को केवल सतर्क ही नहीं रहना होगा, बल्कि नागरिकता कानून के खिलाफ हो रहे दुष्प्रचार की काट भी करनी होगी और वह भी मुस्तैदी से।

कैग के सवाल

अगर खर्च कमाई से अधिक हो जाए तो साख पर सवाल उठना लाजिमी है। वही व्यक्ति या संस्थान कामयाब कहलाता है, जो खर्च को कमाई से अधिक न करे। यही बात सरकार जैसी संस्था पर भी लागू होती है। हिमाचल प्रदेश विधानसभा के शीतकालीन सत्र के अंतिम दिन पेश की गई नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की 2017-18 की रिपोर्ट में भी साफ कहा गया है कि प्रदेश में आय के मुकाबले खर्च अधिक हो रहा है। सदन पटल पर रखी रिपोर्ट में आर्थिक प्रबंधन की कई खामियों की ओर इंगित किया गया है। कैग ने खुलासा किया है कि प्रदेश में राजस्व प्राप्तियों के मुकाबले खर्च तीन फीसद अधिक किया जा रहा है। यहां तक कि प्रदेश का राजस्व घाटा ही एक साल में 922 करोड़ रुपये बढ़ गया है। आय के मुकाबले व्यय अधिक होने की वजह से सरकार को आर्थिक मोर्चे पर दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है और कर्ज का सहारा लेना पड़ रहा है। कैग की मानें तो आने वाले दस साल में सरकार को साढ़े 21 हजार करोड़ के कर्ज एवं 9483 करोड़ रुपये के ब्याज का भुगतान करना है। इसके अलावा कई सरकारी विभागों के कार्यों पर असंतोष जताया गया है और उनकी कार्यप्रणाली पर सवाल खड़े किए गए हैं। लोक निर्माण विभाग एवं योजना विभाग सड़कों के लिए विधायकों को पूछना तक गंवारा नहीं समझते। मनमानी से सड़कों को नाबार्ड में डाला जाता है। आबकारी एवं कराधान विभाग भी ठेकेदारों पर मेहरबान रहा और उन पर कार्रवाई करने से बचा रहा। कई योजनाओं पर भी सरकार को कठघरे में खड़ा किया गया है। कैग ने रिपोर्ट के माध्यम से जो चेतावनी दी है, उस पर सरकार को गंभीर होकर कार्यप्रणाली में सुधार लाने होंगे। पूर्व की खामियों से सबक लेकर खामियों से पार पाने के उपाय करने होंगे। आय के संसाधनों को बढ़ाने के उपाय किया जाना भी जरूरी है। कर्ज लेकर थोड़े समय के लिए मुसीबत को टाला तो जा सकता है, लेकिन यह स्थाई समाधान नहीं है। इसके लिए जरूरत है कि उन क्षेत्रों की पड़ताल करनी चाहिए, जिनसे राजस्व का सृजन हो सकता है। सत्तापक्ष और विपक्ष को मिलकर समाधान की दिशा में कदम बढ़ाने होंगे। खर्च में कटौती के उपायों पर भी गंभीर होना होगा। आय के संसाधन बढ़ेंगे तो कर्ज से मुक्ति की तरफ कदम बढ़ेंगे और प्रदेश खुशहाल होगा।

कैग रिपोर्ट में जिन बिंदुओं को उठाया गया है, उन पर बात होनी चाहिए। उन खामियों को दूर करने के लिए कदम उठाए जाने की जरूरत है

भारतीय हितों की जानबूझकर अनदेखी

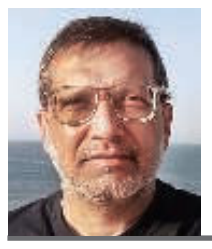

शंकर शरण

जो अभी अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश के मुस्लिम 'उत्पीड़ितों' के लिए आहें भर रहे हैं उन्होंने कभी भी कश्मीरी पंडितों के अपमान, विस्थापन पर एक शब्द नहीं कहा

दुनिया भारत को हिंदू देश जानती है। अनुच्छेद 370 हटाने को सामान्य बताते हुए सऊदी प्रिंस ने कहा था कि 'वह तो हिंदू देश है', लेकिन यही देश यानी भारत जब पड़ोस के उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों को शरण दे रहा है तो आपत्ति हो रही है। आपत्ति करने वालों में अग्रणी हिंदू परिवारों में जन्मे नेता और बौद्धिक भी हैं। उन्हें बांग्लादेश और पाकिस्तान में प्रताड़ित हो रहे हिंदू धर्म-समाज के सिवा सबकी चिंता है। उन्हें हिंदू समाज के अतिरिक्त कहीं कोई अंधविश्वास, क्रूरता, गंदगी नहीं दिखती। यह विचित्र संवेदनहीनता है। विडंबना यह है कि यह संवेदनहीनता स्वतंत्र भारत में विकसित हुई। भारतीय अर्थव्यवस्था में धीमेपन को 'हिंदू रेट ऑफ ग्रोथ' कहकर कोसा गया, जबकि कारण नेहरूवादी कम्युनिस्ट नीतियां थीं। हालांकि गत सात सौ साल से भारत हिंदू शासकों द्वारा नहीं, वरन विदेशियों से शासित रहा, फिर भी सारी गड़बड़ी का कारण हिंदू समाज को बताया जाता है। वस्तुतः लंबी विदेशी दासता और विजातीय शिक्षा ने एक वर्ग को आत्महीन बना दिया है। वे हिंदुओं पर होने वाले अन्याय, भेदभाव से निर्विकार रहते हैं, जबकि बाकी देश-विदेश के किसी भी समूह के लिए भरपूर परेशान होते हैं। इसी का नया उदाहरण सामने है। सत्तर वर्षों से उपेक्षित, अनाथ हिंदुओं, बौद्धों और अन्य ऐसे ही अल्पसंख्यकों को नागरिकता मिलने के निर्णय से वे तनिक भी प्रसन्न नहीं हुए। वे मुस्लिम आव्रजकों के लिए चिंतित हैं और इस पर संविधान की दुहाई दे रहे हैं। यह भूलकर कि संविधान देश के नागरिकों पर लागू होता है, विदेशी लोगों पर नहीं। अन्य देशों, लोगों, घटनाओं आदि पर नीति आवश्यकतानुसार बनती है। जैसे यह तर्क मूर्खतापूर्ण है कि किसी देश के साथ संधि की तो दूसरे के साथ क्यों नहीं की? वैसे ही कहा जा रहा है कि एक शरणार्थी को लिया तो दूसरे को क्यों नहीं लिया? जो लोग अभी अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश के मुस्लिम 'उत्पीड़ितों' के लिए आहें भर रहे हैं, उन्होंने कभी भी देश के अंदर ही चार लाख कश्मीरी पंडितों के अपमान, विस्थापन और सामूहिक संहार पर एक बयान तक नहीं दिया, जुलूस और विरोध तो दूर की बात है। इसी तरह पाकिस्तान, बांग्लादेश, फिजी, मलेशिया आदि में हिंदुओं और अन्य अल्पसंख्यकों के साथ होते दुर्व्यवहार, जुल्म पर कभी एक शब्द नहीं कहा। अरब देशों में काम करने वाले लाखों हिंदू अपने धर्म-त्योहार नहीं मना सकते, मगर इस पर हमारे बौद्धिकों ने कभी औपचारिक प्रतिवाद नहीं किया। नागरिकता कानून पर सारे शोर-शराबे के पीछे भारतीय हितों के विरोध की राजनीति है। यह अन्य धर्मों के दुखियारों की चिंता हरगिज नहीं है। यह हिंदू धर्म-समाज पर चोट करने, लज्जित, अपमानित करने का नया बहाना है। इन निंदकों ने कभी जेहादियों या धोखाधड़ी से धर्मांतरण कराने वाले मिशनरियों की भी आलोचना नहीं की। माओवादियों, उग्रवादियों की क्रूर हिंसा पर भी उन्हें कुछ महसूस नहीं होता, किंतु कोई हिंदू संगठन अपने मंदिरों पर इस्लामी या सरकारी कब्जा हटाने की मांग करे तो इन्हें नागवार लगता है। वे अयातुल्ला खुमैनी और यासीर अराफात जैसे शासकों के लिए शोकमग्न होते हैं। यही भावना औपचारिक शिक्षा तक में घुसा दी गई है। पाठ्य पुस्तकों में महानतम हिंदू ज्ञान-ग्रंथों के प्रति भी तिरस्कार मिलता है, जबकि हिंसा और अंधविश्वास से भरी सामग्री के प्रति आदर भरे लंबे-लंबे अध्याय हैं।

रोज घटने वाले ऐसे विचित्र कारनामों की सूची अंतहीन है। उनमें केवल एक समान तत्व है। हर हिंदू पीड़ा और चाह की निंदा, खिल्ली उड़ाना तथा हर मुस्लिम, ईसाई गतिविधि को समर्थन या उनका बचाव, चाहे वह गैर-कानूनी, हिंसक और अमानवीय ही क्यों न हो। नियमित ऐसे समाचार आते रहते हैं, लेकिन नागरिकता का मुद्दा जनसांख्यिकी समस्या से भी जुड़ा है, इसलिए यह अधिक गंभीर है। आज यूरोप और अमेरिका में भी जनसांख्यिकी एक बड़ा मुद्दा है, क्योंकि यह जेहादी हथियार के रूप में भी प्रयोग हो रहा है। ब्रिटेन में कंजरवेटिव पार्टी की हालिया जीत में यह एक प्रमुख कारण है, जहां लोगों ने यूरोपीय संघ से अलग होने का निश्चय दोहराया। वे अरब से आने वाले शरणार्थियों को रोकना चाहते हैं, क्योंकि कई इस्लामी संगठनों की रणनीति मुस्लिम आबादी बढ़ाकर प्रभुत्व कायम करना है। बहुत पहले लाहौर में इस्लामी देशों की एक बैठक में यूरोप में मुस्लिम आव्रजन बढ़ाकर 'जनसांख्यिकी प्रभुत्व' की योजना घोषित की गई थी। कुछ भारतीय मुस्लिम नेता भी ऐसी बातें कहते रहते हैं। वे कश्मीर पर मुंह सिले रखते हैं, पर बोस्निया, अफगानिस्तान, इराक जैसे देशों के लिए नियमित बयान जारी करते रहते हैं। यह पूरा परिदृश्य मामले की गंभीरता दिखाता है।

पूर्वी यूरोप ने तो मुस्लिम आव्रजन पर पूरी पांबदी लगा दी है। आरके ओहरी की पुस्तक 'लांग मार्च ऑफ इस्लाम' में दुनिया के जेहादी आंदोलनों का लेखा-जोखा है। जब दुनिया में मुस्लिम आबादी 18 प्रतिशत थी तो केवल सात देशों में जेहाद चल रहा था। आज यह आबादी बढ़कर 22 प्रतिशत हो गई है तो तीस देश जेहाद की मार झेल रहे हैं। सीरिया, लेबनान, बोस्निया, कोसोवो इसके उदाहरण हैं।

याद रहे कि भारत विभाजन भी जेहादी सिद्धांत पर हुआ था। मुस्लिम लीग के पाकिस्तान प्रस्ताव में भी जेहाद का उल्लेख था। फिर भारत में कश्मीर या बंगाल को भारत से अलग करने की बात भी केवल मुस्लिम संख्या बल के आधार पर ही की जाती रही है। तब क्या दुनिया के एकमात्र हिंदू देश भारत को फिक्र नहीं करनी चाहिए कि यहां जनसांख्यिकी और न बिगड़े? यहां के मुसलमान पहले ही अपने लिए एक अलग देश तक ले चुके हैं। ये बातें कोई सांप्रदायिकता, असहिष्णुता नहीं, बल्कि अपना धर्म और देश बचाने की चिंता है। इससे आंख चुराने को प्रगतिशीलता कहा जा रहा है। वास्तव में इसी कारण बंगाल और दिल्ली की हिंसा पर चुप्पी साधी जा रही है। यह एक सुनियोजित साजिश ही है कि पहले लोगों को उकसाया गया, फिर जब वे हिंसा पर उतरे तो अराजकता फैलाने वालों के बजाय पुलिस और सरकार को कोसा जा रहा है।

यह दुखद है कि सेक्युलर-वामपंथी बौद्धिक जिस पीड़ा, अन्याय और भेदभाव की चिंता सारी दुनिया के लोगों के लिए करते हैं, वह सौ वर्षों से हिंदू भी झेल रहे हैं, किंतु हमारे विचित्र बौद्धिक इन्हें अपने हाल पर छोड़ अपना आक्रोश और दुख बाकी हरेक के लिए व्यक्त करते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि व्यक्ति की तरह हर देश की भी अपनी आत्मा और नियति होती है। भारत की आत्मा और नियति हिंदू धर्म से जुड़ी है। इसकी रक्षा और चिंता करना किसी सच्चे भारतीय का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। यह हमारे देश ही नहीं, विश्व के हित के लिए भी जरूरी है, लेकिन उसकी अनदेखी करने को ही बौद्धिकता का पर्याय बना दिया गया है।

(लेखक राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

सुधार मांगती आपराधिक न्याय प्रणाली

वैभव कृष्ण

आपराधिक न्याय प्रणाली की किसी एक कड़ी को दुरुस्त करने से काम नहीं चलेगा। इसमें व्यापक सुधारों से ही बात बनेगी

बीते दिनों हैदराबाद में एक महिला पशु चिकित्सक के साथ हुई दरिंदगी से पूरा देश उबल पड़ा। इस मामले में आरोपितों के पुलिस एनकाउंटर में मारे जाने से एक अलग तरह की बहस भी खड़ी हो गई। इस मामले ने देश में आपराधिक न्याय प्रणाली यानी सीजेएस को लेकर नए सिरे से कुछ सवाल खड़े किए हैं। उन पर विचार करना बेहद जरूरी है। इसमें सबसे पहला पहलू तो पुलिस द्वारा एफआइआर यानी प्राथमिकी दर्ज करने से जुड़ा है। इस पर राष्ट्रीय पुलिस आयोग, मलिमथ समिति, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अलावा टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के तमाम प्रतिवेदन बेहद महत्वपूर्ण हैं जिन्होंने अलग-अलग अनुशंसा की हैं। सबसे पहले तो प्राथमिकताएं तय करनी होंगी। मसलन क्या हमें वही पुरानी परिपाटी कायम रखनी चाहिए कि कोई पुलिस स्टेशन दुष्कर्म और हत्या से लेकर डाटा चोरी जैसे पेचीदा साइबर मामलों और बैंक धोखाधड़ी एवं फर्जी पोंजी योजनाओं जैसे आर्थिक अपराध और तमाम आम घरेलू झगड़ों के मामले में भी वैसी ही कार्रवाई करे। इन सभी मामलों में पहले एफआइआर दर्ज कर फिर उनकी पड़ताल करनी होगी। या फिर तंत्र को इस तरह सुगठित करना होगा कि आम धोखाधड़ी के मामले किसी और विभाग को सौंपे जाएं। एफआइआर को लेकर हमें यह भी समझना होगा कि पुलिसकर्मियों से लेकर बुनियादी ढांचे के लिहाज से प्रत्येक पुलिस स्टेशन के पास बेहद सीमित संसाधन होते हैं। ऐसे में मामलों की गंभीरता को लेकर उनकी प्राथमिकता तय की जा सकती है। जैसे कई राज्यों ने साइबर अपराधों से निपटने के लिए अलग पुलिस स्टेशनों की व्यवस्था शुरू की है। कुछ ऐसे ही इंतजाम दूसरे आम अपराधों के लिए भी किए जा सकते हैं। आपराधिक प्रवृत्ति वाले कुछ दीवानी मामलों को पुलिस स्टेशन की देहरी तक पहुंचने से रोका जा सकता है। कम से कम उन शहरी पुलिस स्टेशनों तक तो इसे संभव किया जाए जो पहले से ही बहुत ज्यादा काम के बोझ तले दबे हैं। इसकी अनदेखी नहीं कर सकते कि अपराधों से निपटने के लिए प्रतिभा, नए तौर-तरीकों, वित्तीय एवं मानव संसाधन की आवश्यकता होती है। इसमें आंतरिक टकराव न हों, उसे टालने के लिए कानून में आवश्यक बदलाव करने होंगे।

भारत में एफआइआर का बहुत महत्व है। अगर किसी का नाम किसी कारण से एफआइआर में आ जाए तो वह व्यक्ति आपराधिक इतिहास के दायरे में आ जाता है। इस कारण भविष्य में पासपोर्ट बनवाने, हथियार लाइसेंस लेने या किसी अन्य मकसद के लिए जब भी उसके पुलिस रिकॉर्ड की जरूरत होगी तब-तब वह एफआइआर उसका पीछा करेगी। वर्ष 2007 में मेरी तैनाती बतौर पुलिस अधीक्षक बाराबंकी में थी। वहां मैंने सभी संज्ञेय अपराध दर्ज कराने को प्रोत्साहन देने के लिए 'एफआइआर मेला' शुरू किया। इससे कुछ ही दिनों में सैकड़ों एफआइआर दर्ज हो गईं। एक एफआइआर में मध्य प्रदेश के एक वरिष्ठ आइएएस अधिकारी का नाम भी आया। असल में गांव में उनके भाई का एक पड़ोसी से विवाद था और जैसा कि अधिकांश भारतीय गांवों में परंपरा है कि किसी विवाद में संबंधित व्यक्ति के पूरे परिवार को घसीट लिया जाता है वही इस मामले भी हुआ जबकि वह आइएएस अधिकारी काफी अरसे से अपने गांव ही नहीं गए थे। मैंने किसी तरह उनका नाम एफआइआर से हटवाया। यदि निर्बाध रूप से एफआइआर की व्यवस्था करनी है तो उससे पहले इन विसंगतियों को दूर करना होगा।

सीजेएस में सुधार की पहली कड़ी एफआइआर के मोर्चे पर न्यायिक हस्तक्षेप की दरकार होगी ताकि पुलिस अपने लिए सही लक्ष्य तय कर सके। दूसरी कड़ी जांच की गुणवत्ता से जुड़ी है। सभी राज्यों में जांच मुख्य रूप से इकबालिया बयानों पर अधिक और साक्ष्यों पर कम आधारित होती है। आदर्श रूप में जांच साक्ष्यों पर आधारित हो जिसके लिए आधुनिक फोरेंसिक लैब जैसे बुनियादी ढांचे और पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की दरकार होगी। तीसरी कड़ी अभियोजन पक्ष को व्यापक रूप से सुधारने से जुड़ी है। निचली, सत्र अदालतों में अभियोजन अधिकारियों की गुणवत्ता गंभीर चिंता का विषय है। कुछ राज्यों में तो ये राजनीतिक नियुक्तियां बन गई हैं। उनके प्रदर्शन को आंकने की प्रणाली भी दोषपूर्ण है।

सीजेएस में सुधार की चौथी कड़ी के तहत विभिन्न न्यायिक प्रक्रियाओं को कानून में जरूरी बदलावों के अनुसार शीघ्रता से निपटाना होगा। किसी मामले में जांच पूरी होने और आरोपपत्र दाखिल होने के बाद भी संबंधित न्यायालय में सभी आरोपियों के खिलाफ आरोप तय करने में कई साल लग जाते हैं। आरोप तय करना ही मुकदमे का पहला पड़ाव होता है। इस तरह कुछ साल दोषसिद्धि पर चर्चा के बजाय आरोप तय करने में ही निकल जाते हैं। इसमें निचली अदालतें और असंवेदनशील नजर आती हैं जो जांच अधिकारियों की अनदेखी कर महिलाओं से जुड़े अपराधों में बयान दर्ज कराने में ही कई दिन लगा देती हैं। उनमें भ्रष्टाचार भी गंभीर चिंता का विषय है। इस कड़ी में पांचवां पेच जमानत रद करने की पूरी प्रक्रिया को दुरुस्त करने से जुड़ा है। क्या इसे तय करने का अधिकार जिला पुलिस अधीक्षक को दिया जा सकता है और क्या जमानत रद करने के मामले में सरकारी वकील अदालतों में उसकी ओर से पैरवी कर सकते हैं? यह बहुत ही लिखापढ़ी और लंबी खिंचने वाली प्रक्रिया है। इन दिनों अदालतों द्वारा अग्रिम जमानत या गिरफ्तारी पर रोक जैसा चलन भी बेहद आम है, लेकिन क्या इन मामलों में पुलिस समय से और प्रभावी अपील कर सकती है? वास्तव में आदतन अपराधियों से निपटने में अभियोजन के पास कोई रणनीति नहीं होती। वे बार-बार अपराध करते हैं, लेकिन उन्हें पूर्व में मिली जमानत खारिज नहीं होती। आपराधिक न्याय प्रणाली को सुधारने की छठी कड़ी का संबंध दीवानी न्याय प्रणाली में समांतर सुधारों से जुड़ा है। असल में अपराध रोकना दोनों का साझा दायित्व है।

किसी भी समाधान के लिए हमें सबसे पहले समस्या को समझना होगा। अपराध रोकने के लिए सीजेएस में आवश्यक सुधार करने होंगे। पुलिस इसका विकल्प नहीं है। सीजेएस की किसी एक कड़ी को दुरुस्त करने से काम नहीं चलेगा। इसमें व्यापक सुधारों से ही बात बनेगी।

(लेखक भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

असंभव के विरुद्ध

जिंदगी की जद्दोजहद पहले भी थी, आज भी है और आगे भी रहेगी। परिस्थितियां सदैव एक समान नहीं होतीं। कभी मनुष्य के सम्मुख तो कभी विरोधी होती हैं। संघर्ष ही जिंदगी है। अतः संघर्ष के लिए व्यक्ति को हर समय मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिए। अस्तित्व एवं वर्चस्व की लड़ाई में विवेकवान व्यक्ति ही सफलता की मंजिल चूम पाते हैं, लेकिन अक्सर संघर्ष की स्थिति में व्यक्ति का साहस घटने लगता है। वह इतना भयभीत होने लगता है कि संघर्ष की चुनौती को स्वीकार करना ही छोड़ देता है। ऐसे लोगों के लिए भाग्य के दरवाजे भी सदैव बंद ही रहते हैं। जीवन में कुछ किए बिना ही जय जयकार संभव नहीं है। व्यक्ति के कर्म ही उसे इस चराचर जगत में यश, कीर्ति और वैभव के अलंकारों से अलंकृत कर सकते हैं। संघर्ष से मुंह मोड़ने वालों से जिंदगी की तमाम खुशियां भी मुंह मोड़ लेती हैं। दुनिया में जितने भी धनपति हैं उन्होंने अपनी शुरुआत बहुत ही छोटे से पड़ाव से की और वे परिणाम की चिंता किए बगैर निरंतर गतिशील रहे। भौतिक परिस्थितियां मजबूत इच्छाशक्ति के आगे बौनी हैं। शरीर बीमारियों का घर है और मृत्यु की बीमारी हर व्यक्ति के लिए लाइजाज है, लेकिन मन की शक्ति इन बीमारियों से लड़ने का अद्भुत सामर्थ्य रखती है।

इतिहास और वर्तमान ऐसे कई व्यक्तियों की दास्तानों से भरा पड़ा है जिन्होंने मृत्यु को भी अपनी अदम्य साहसशक्ति से विचलित करके उसे एक नए जीवन में रूपांतरित करने का करिश्मा किया। इसलिए जो व्यक्ति किसी कार्य को असंभव मानकर मेहनत और उसके लिए साहस जुटाने का प्रयास ही नहीं करता उसके समक्ष ये मिसालें किसी बड़े साक्ष्य से कमतर नहीं हैं। अक्सर यूपीएससी और आइआइटी जैसी प्रतियोगी परीक्षाओं को लेकर ऐसा हौवा बना दिया जाता है कि कई छात्र उसमें सफल होने की कल्पना करना ही छोड़ देते हैं। उन्हें समझना होगा कि यदि किसी व्यक्ति ने उस असंभव कार्य को संभव कर दिया है तो आप क्यों नहीं कर सकते।

देवेंद्रराज सुथार

आदिवासी समाज में विभाजन

चंदन कर्ण

झारखंड में यह मांग उठने लगी है कि जो आदिवासी ईसाई बन गए हैं उन्हें अनुसूचित जनजाति के दायरे से बाहर किया जाए

झारखंड का आदिवासी समाज भीतर ही भीतर सुलग रहा है। यह सुलगाव उस समाज के ही अंदर घर कर रहे उस विभाजन के कारण है, जो वहां के आदिवासियों को सरना और ईसाई धर्मसमूहों में बांटता है। कई लोगों का मानना है कि राज्य में विभिन्न ईसाई मिशनरी सेवा की आड़ में लंबे समय से राज्य के आदिवासियों के धर्मांतरण में लिप्त हैं, लेकिन अब यह मामला तूल पकड़ता जा रहा है। सरना आदिवासियों और उनके नेताओं की ओर से यह मांग उठने लगी है कि जो आदिवासी ईसाई बन गए हैं उन्हें अनुसूचित जनजाति के दायरे से बाहर किया जाए। इनका तर्क है कि कोई अल्पसंख्यक और अनुसूचित जनजाति का फायदा एक साथ नहीं ले सकता। धर्मांतरण विरोधी नेताओं के बीच यह धारणा है कि चर्च उनके खिलाफ साजिश रच रहा है और उनके धर्म और संस्कृति को नुकसान पहुंचा रहा है, ताकि उनकी मौलिकता और पहचान खत्म कर उन्हें ईसाई खेमे में लाया जा सके। इसमें कोई दो राय नहीं कि ईसाई धर्म को अपनाने वाले आदिवासियों के जीवन में कई चीजें बदल जाती हैं। मसलन वे चर्च जाने लगते हैं और परंपरागत पूजा स्थलों जैसे मांझी थान एवं जाहेर थान से उनका नाता टूट जाता है। अपने सामाजिक संस्कारों और पर्व-त्योहारों से भी उनका दुराव होने लगता है। उन पर ऐसे आरोप भी हैं कि वे अपने सजातीय सरना परिवार की बेटियों को स्वीकार नहीं करते अथवा इसके लिए उन पर ईसाई धर्म को स्वीकार करने की शर्त रख देते हैं। इन सब कारकों की वजह से सरना और ईसाई आदिवासियों के बीच दूरी बढ़ रही है।

हालांकि राज्य सरकार ने झारखंड धार्मिक स्वतंत्रता बिल, 2017 पास किया है, जो लोभ या लालच के आधार पर धर्मांतरण पर प्रतिबंध लगाता है। इस कार्य को दंडनीय अपराध बनाया गया है। कानून बनने से धर्मांतरण पूरी तरह से तो नहीं रुका है, लेकिन विभिन्न आदिवासी बहुल जिलों में धर्म परिवर्तन के लिए उपायुक्तों के पास आने वाले आवेदन पत्रों की संख्या में उल्लेखनीय कमी दर्ज की गई है। उल्लेखनीय है कि झारखंड भी अन्य कई जनजातीय बहुल राज्यों की तरह संविधान की पांचवीं अनुसूची से संरक्षित है, जहां राष्ट्रपति वहां के राज्यपाल की सलाह पर राज्य के लोगों की सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण के लिए विशेष कानून बना सकते हैं। तो फिर क्यों नहीं इन जनजातीय समूहों की सभ्यता-संस्कृति की रक्षा के उद्देश्य से धर्मांतरण पर पूरी तरह से रोक लगा दिया जाए? हालांकि इस विचार के विरोधियों का तर्क यह है कि आदिवासी पहचान धर्म पर आधारित नहीं है। लोग आदिवासी जन्म से होते हैं और इनसे जनजातीय अधिकार कोई छीन नहीं सकता। बहरहाल चुनावी मौसम में इस मामले ने अब राजनीतिक रंग भी पकड़ लिया है, जहां भाजपा और सरना आदिवासियों के संगठन धर्मांतरण पर पूरी तरह से रोक के पक्ष में हैं, वहीं प्रदेश के ईसाई संगठन इस तरह के किसी भी संभावित कदम का विरोध कर रहे हैं। फिलहाल लोभ और लालच के द्वारा धर्मांतरण को अवैध बनाकर भाजपा ने पहली बाजी तो जीत ही ली है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

दुविधा-ग्रस्त मानसिकता

अश्विनी कुमार ने अपने आलेख 'अयोध्या प्रकरण का पूर्ण पटाक्षेप' में एक लेखक से अधिक एक राजनीतिक नेता होने का परिचय दिया है। वह कोई बात स्पष्ट कहने से बचे हैं। उनकी दुविधा पूरे आलेख में उजागर है। क्या अच्छा नहीं होता कि वह साफ-साफ कहते कि मुस्लिम समाज के पैरोकार बने कुछ लोग पूरे हृदय से सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय स्वीकार कर विवादित स्थल हिंदू समाज को सौंप दें और मंदिर बनाने में हाथ बटाएं, जैसा कि शिया धर्मगुरुओं ने कहा है। इससे राष्ट्रीय एकता के वातावरण का सृजन होता। कांग्रेसी नेतागण दोनों नावों पर सवार होने की कोशिश करते हैं। एक ओर कट्टरपंथियों को खुश करना, दूसरी ओर न्याय की बात कर निष्पक्ष दिखने का प्रयास। इसी नीति के अंतर्गत उन्होंने अपनी सरकार के समय सुप्रीम कोर्ट में शपथपत्र दिया कि राम काल्पनिक हैं, लेकिन साथ में जनता के बीच रामराज की बात भी करते रहे। दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम, सो बेचारे गए नीचे। अश्विनी कुमार सुप्रीम कोर्ट के फैसले को संतुलित और इंसाफ करने वाला बताते हैं, किंतु अगले ही वाक्य में लिख देते हैं कि यह विधि के सिद्धांतों का उल्लंघन है और 'अदालत ने समान नागरिकता के संवैधानिक संकल्प को पूरा नहीं किया।' इसमें समान नागरिकता का संकल्प कहां से आ टपका? अदालत राममंदिर पर निर्णय करने बैठी थी। उससे संबंधित पुरातात्विक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर सर्वसम्मत निर्णय उसने सुनाया। वास्तव में इस निर्णय में राष्ट्रीय एकता का प्रदर्शन था। वहीं वकील कपिल सिब्बल, अभिषेक मनु सिंघवी और राजीव धवन निरंतर इस कोशिश में रहे कि अंतिम निर्णय टला रहे, ताकि दोनों प्रमुख समाजों में खटास का मुख्य कारण विद्यमान रहे। राष्ट्रीय हित पर ऐसी चोट एक राष्ट्रीय कहे जाने वाले दल को शोभा नहीं देती। कांग्रेस यह बात कब सीख सकेगी, यह देखना बाकी है।

अजय मित्तल, मेरठ

दोषियों को मिले सजा

सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्भया के एक दोषी की पुनर्विचार याचिका पर अभी सुनवाई की जाएगी। वर्ष 2012 में घटी यह दुखद घटना अभी तक लोगों के दिलों दिमाग में ताजा है, ऐसे में सात साल बाद भी दोषियों को सजा नहीं मिल पाना बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। असल में इस तरह के अपराध को अंजाम देने वाले दोषियों को जल्द से जल्द सजा देने का प्रावधान होना चाहिए।

वैशाली, पूर्वी दिल्ली

बढ़ती महंगाई

देश में महंगाई बहुत तेजी से बढ़ रही है। पेट्रोल, डीजल, प्याज, टमाटर अब दूध में भी 3 रुपये किलो तक बढ़ोतरी हुई है। देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती, बेरोजगारी दूर करना, महंगाई पर नियंत्रण ऐसे विषयों पर सरकार को ठोस कदम उठाने की जरूरत है, ताकि आम जनता इस महंगाई के एवं गिरती हुई अर्थव्यवस्था के प्रकोप से बच सके।

विजय किशोर तिवारी, नई दिल्ली

दहेज की बुराई

देश में देहज प्रथा बड़ी समस्या बना हुआ है। इससे जहां गरीब लोगों के सामने बेटियों की शादी की समस्या खड़ी होती है, वहीं भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिलता है। बहुत लोग गलत तरीके से भी पैसा कमाकर शादियों में दिखावा करते हैं। अगर इस पर रोक लग जाए तो बेटियों को लेकर गरीब की चिंता दूर होगी और भ्रष्टाचार भी कुछ सीमा तक कम हो सकता है।

मो. जमील, नई दिल्ली

चिंतनीय घटनाएं

कांग्रेस नेता राहुल गांधी के दुष्कर्म पर दिए बयान पर जो प्रतिक्रिया हो रही है वह जायज है, लेकिन विरोध करने वाले दलों एवं नेताओं को यह भी सोचना होगा कि वाकई में पिछले छह-सात सालों से जिस प्रकार से दुष्कर्म की घटनाएं हो रही हैं और फलस्वरूप हत्याएं की जा रही हैं, वह वाकई में बहुत ही चिंतनीय है। राहुल गांधी या अन्य इस मुद्दे पर बोलें या ना बोलें, लेकिन महिला अपराध के आंकड़े इस कड़वी सच्चाई को झुठला नहीं सकते। महिला सुरक्षा के हित में कानून व्यवस्था को कड़ा करना होगा। साथ ही विकृत मानसिकता के लोगों पर अंकुश लगाना होगा।

hemahariupadhyay@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ